व०मू०
८-००

नुष्य बनो

णा गति

शुभ संकल्प,

I,

प्रेम,

म कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

फकीरचन्दजी महाराज

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तवि
कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार,
सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है
बनना और बनाना ।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध अं
रण भाषा में प्रचार करना ।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को
दिया जायगा ।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्प
होगा । लेख सम्पादक के नाम भेजे जॉय ।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ सा
लिखना चाहिये । उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये
पीं० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी । इसका वार्षिक मूल्य ८—

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले
डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अ
निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दू
बिना मूल्य भेजी जा सकेगी ।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आ
के नाम से भेजने चाहिये । मनीआर्डर कूपन पर अपना पता
लिखना चाहिये । और पते की तबदीली भी ।

प्रकाश

R. S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	श्रावण संवत २०४० वि०	अङ्क १०

प्रार्थना

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया ।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

बन कर आये परम फकीर, हरने सब जीवों की पीर ।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार ।
ऐसे गुरु को बारम्बर, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

दाता दयाल के प्यारे तुम मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

।। मनुष्य बनो ।।

शब्द

माखन मथ कर काढ़ ले, छाछ का त्याग विचार ।
माखन तो साधू गहे, छाछ पिये संसार ।।१।।
बिगड़े दूध को क्या मथे, ता में मूल विकार ।
मन बानी को सोध कर, मथ ले माखन सार ।।२।।
पानी मथना भूल है, मथ ले उत्तम क्षीर ।
माखन निकसे दूध से, त्याग जगत का नीर ।।३।।
बड़ी बड़ाई बच्छ की, गहे क्षीर निरवार ।
रक्त मास को नहीं लहे साध का यही विचार ।।४।।
ग्रन्थ क्षीर का कुंड है, मन भांड़ा का रूप ।
चित्त मथानी हाथ ले, माखन मिले अनूप ।।५।।
क्षीर नीर का मेल है, जग का द्वन्द पसार ।
उत्तम क्षीर से काम है, हंस करे निरवार ।।६।।
मान सरोवर के निकट, रहे हंस की पांत ।
जो कोई आवे भाव से, बख्शे क्षीर की दात ।।७।।
परमहंस के दरस से, उपजे निर्मल ज्ञान ।
काग हंस पहिचान कर, तजे आपा मद मान ।।८।।
परमहंस गुरु रुप है, काग रूप संसार ।
काग रूप को जो तजे, सोई साध विचार ।।९।।

(१७४-६०४)

गुरु के मत में आय कर, गूरु मत ले पहिचान ।
वह अवसर और यह समय, बहुर न देखे आन ।।१।।
गुरु मत गुरु भेदी लखे, तासों मन पतियाय ।
पढ़ा लिखा जाना बहुत, यह नहीं ठीक उपाय ।।२।।
नाम तो तेरे घट बसे, नाम से लौ रहे लाग ।
घट का परदा खोल दे, पावे पूरन भाग ।।३।।
आज कहे मैं काल करूँगा, गुरु मूरति का ध्यान ।
काल काल के करत ही, पहुंचा काल निदान ।।४।।

एक घड़ी में जग नसे, छोड़ काल का भर्म ।
जो करना हो आज कर, समझ गुरु का मर्म ॥५॥
काल तू मत करे, काल का नहीं ठिकान ।
जो जाहे सो आज कर, लेकर गुरु का ज्ञान ॥६॥

१७५-६०५

गुरु भक्ति दृढ़ कर भाई । तेरी बनत बनत बन जाई ॥
गुरु बिराजे मन में । गुरु भाव बसे तरे तन में ॥
गुरु शब्द रहे श्रवन में । गुरु छबि रहे नित चितवन में ॥
गुरु नाम की टेक संभारो । गुरु मूरति हृदय धारो ॥
गुरु का जस निसदिन गाओ । गुरु से लौ अपनी लगाओ ॥
दोहा-सांस सांस पर गुरु कहो, प्रगटे ज्ञान विवेक ।
द्वैत भाव मेटो सकल, सिष गुरु मिल रहें एक ॥
बाहर भीतर एक समान । गुरु तन मन गुरु जान और ॥
गुरु के रंग रंगे तन चोला । सो गुरु मुखजग में अनमोला ॥
गुरु मय जगत रूप जब भासे । तब अज्ञान अविधा नासे ॥
तिमिर मिटे घट होय प्रकासा । गुरु मुख गुरु का निज कर दासा ॥
माया मोह का बन्धन छूटे । सो गुरु मुख परमारथ लूटे ॥
दोहा—हर्ष शोक व्यापे नहीं, सम दृष्टि चित होय ।
जाकी ऐसी रहन है, सच्चा सेवक सोय ॥
कर्म करे करता नहीं होय । धर्म धरे धरता नहीं होय ॥
बन्ध में मुक्ति मुक्ति में बंधा । जो ऐसा नहीं सो नर अंधा ॥
काज बने नहीं होय अकाज । साजे प्रेम भक्ति का साज ॥
मन से सुरत रहें अलगान । यही विवेक यही निर्मल ज्ञान ॥
गुरु का रहे निरंतर ध्यान । गुरु बल पाय शिष्य बलबान ॥
दोहा गुरु बल कर्म नसाइये, गुरु बल काटिये फंद ।
गुरु के बल से साधुवा, छूट जाय जग द्वन्द ॥

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी ।
राधास्वामी चरन कोटि परनामी ।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी ।
राधास्वामी घट घट अन्तर्यामी ।।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी ।
राधास्वामी पद में मिले बिसरामी ।।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी ।
राधास्वामी दया उबरे खल कामी ।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी ।
राधास्वामी भजे नर आठों जामी ।।

दोहा राधास्वामी गुरु का रूप है, राधास्वामी निज धाम ।
राधास्वामी चरन में कोटि कोटि परनाम ।।

सहस कँवल धुन राधास्वामी । त्रिकुटी ओं गुन राधास्वामी ।।
राधास्वामी सुन्न मंडल धुनि रारँग । राधास्वामी महासुन्न सुन रारंग ।।
भँवर गुफा मुरली राधास्वामी । सतपद चढ़ धुर ली राधास्वामी ।।
राधास्वामी अलख अपार अरुप । राधास्वामी अगम अथाह अनूप ।।
राधास्वामी धाम है राधास्वामी । राधास्वामी नाम है राधास्वामी

दोहा राधास्वामी लक्ष पद, राधास्वामी वाच ।
राधास्वामी इष्ट है, राधास्वामी साँच ।।

[१७६-६०६]

सुरत रहे राधास्वामी चरनमें, देह बसे संसारा ।
करम करे करता नहीं सेवक, अतर सबसे नियारा ।।१।।
अहंकार की दुर्मति खो, छांड़े मूल विकारा ।
ऐसा सेवक जो कोई सांचा, सो सतगुरु का प्यारा ।।२।।
सेवक करे सहज सेवकाई, जगत अविधा नासे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, घट में सूर प्रकासे ।।३।।

भूल सुधार—कृपया ग्राहक बन्धु पेज नं० २५,२६,२७,२८,२९,३०,३१, ३२, को क्रमशः २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, पढ़े ।

मेरी धार्मिक खोज

धर्म

दाता दयाल का शब्द है:—

ज्ञान दाता ज्ञान दीजे, ज्ञान के भंडार से ।
ज्ञान देकर मुक्ति दीजे, जग के कारागार से ॥
बैठो सतसंग में चित देकर करो सुमिरन मनन ।
दुख न पाऊँ मन की ममता से, न मैं हंकार से ॥
मुझको समता प्राप्त हो, समता की चाहत है बड़ी ।
वृति दृढ़ हो शान्त चित हो, मेरा सब प्रकार से ॥
राग में वैराग में, आनन्द और अफसोस में ।
एक रस जीवन बिता दो अपने तुम उपकार से ॥
शील और संतोष हो, करुणा दया का भाव हो ।
राधास्वामी ! दुख न पाऊँ, मैं कभी संसार से ॥

कल एक चिट्ठी श्री सुशील कुमार मुनि की और संत कृपाल सिंह के हस्ताक्षरों से थी। ऊपर लिखा हुआ था Dear Brother आगे Sister। लिफाफे पर नाम लिखा हुआ था टेक चन्द, १८ रेलवे मंडी होशियारपुर। चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था कि कुल विश्व के जितने धर्म हैं उनका चौथा सम्मेलन फरवरी १९७० में दिल्ली में होने वाला है। उसमें उन्होंने आने का निमन्त्रण भेजा है।

मैंने श्री सुशील कुमार जी व संत कृपाल सिंह जी को लिखा है कि भई ! गलती से तुमने टेक चन्द का पता दिया या गलती से लिखा गया ? अपने आप से पूछता हूं कि तूने संत मत में बहुत कुछ काम किया। तेरे काम करने का उद्देश्य क्या है ? उद्देश्य इस शब्द में ऊपर लिखा हुआ है। वह है:—

ज्ञान दाता ज्ञान दीजे, ज्ञान के भंडार से ।
ज्ञान देकर मुक्ति दीजे, जग के कारागार से ।।
बैठो सतसंगत में चित, देकर करो सुमिरन मनन ।
दुख न पाऊँ मन की ममता से, न मैं हंकार से ।।

यह है मन्तव्य ? महात्मा और साधू संत का इस संसार में बड़ा आदर मान है । पहिला प्रश्न मेरे अन्तर यह आता है कि महात्मा किसे कहते हैं ? हमने शब्द ही सुने हुये हैं न ? महात्मा-महात्मा महान आत्मा ! हर एक आदमी के अन्तर में आत्मा रहती है । आत्मा क्या है ? सब सम्प्रदाय आत्मा को प्रकाश स्वरूप मानते हैं या नूर रूप मानते हैं । प्रकाश स्वरूपी आत्मा जब अपने अन्तर में या किसी का आपा जो अपने आप में प्रकाश स्वरूप हो जाता है वह जब अपने प्रकाश स्वरूप को इस बड़े प्रकाश स्वरूप से जो परमात्मा है या ब्रह्म है या खुदा है उसमें मिला देता है, इसका नाम महात्मा है ।

जो मनुष्य अपने आपको प्रकाशमय बना सकता है और उस महान प्रकाश में गोता लगा सकता है उसमें क्या आजाता है ? उस में ज्ञान आजाता है, समझ आजाती है । उस समझ के आधार पर संसार को रास्ता दिखा सकता है । मैंने सतसनातनधर्म नामी एक पुस्तक लिखी है । उज्जैन में साठ सतसंग दिये थे कुम्भ के अवसर पर । वह उसमें प्रकाशित हुये हैं । मैंने वहां लिखा है कि संसार के इस भौतिक जगत तथा मानसिक जगत में शान्ति प्राप्त करने का यदि कोई सच्चा ज्ञान दे सकता है तो वह पुरुष दे सकता है जो महात्मा हो अर्थात जिसका अपना आत्मा उस बड़े प्रकाश में लय हो सकता है । वही सच्चा पथ प्रदर्शक हो सकता है, संसार के दुखों से अर्थात इस संसार में जो दुख सुख हैं उनसे बचने के लिये मैंने श्री सुशील कुमार जी तथा संत कृपाल सिंह जी को लिखा है कि यदि आप मुझे बुलाना चाहते हैं तो बताईये आप मुझे कितना समय देंगे ? दस या पन्द्रह मिनट या आध घन्टा आप लोग वहां लेक्चर देने के लिये लोगों को कहते हैं । दस पन्द्रह मिनट में कोई क्या ज्ञान देगा ! क्या समझायेगा !

इस शब्द में तो लिखा है :

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भंडार से ।
ज्ञान देकर मुक्ति दीजे, जग के कारागार से ॥

वह तो कहते हैं ज्ञान दो । ज्ञान के लिये क्या होना चाहिये ।

बैठो सत संगत में, चित देकर करो सुमिरन मनन ।
दुख न पाऊँ मन की ममता से, न मैं हंकार से ॥

पहले तो मैं इस बात से हैरान होता हूं कि कितने आदमी हैं जो सत्संग के वचनों को सुनेंगे । उनको श्रवण और मनन का क्या अवसर मिलेगा ? यह जितने काम हैं कान्फ्रेंस या बड़े बड़े सम्मेलन, इनमें सिवाय एक तमाशे के या रौनक के और मेले के किसी को कोई विशेष लाभ नहीं पहुंच सकता । इस लिये मेरे दिल में यह ख्याल आया कि अपने जीवन का अनुभव ज्ञान जो अपनी आत्मा को उस परमात्मा में मिलाने से हुआ, वह मैं दे जाऊँ । क्यों ?

मैं संसार के दुखों से दुखी होकर अशान्त था । मेरे कर्म, भगवान की इच्छा या मौज मुझको उस सुख की खोज के क्रम में दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज, परम तत्व के ज्ञान स्वरूपी अवतार, के चरणों में ले गई । उन्होंने जीवन को संभाला और मेरे जिम्मे एक ड्यूटी लगादी । वह ड्यूटी क्या है ? वे मुझे आज्ञा देते हैं :—

तू फकीर है मेरे प्यारे, सुन फकीर की बानी ।
साधु कहें फकीर को भाई, साधो जग सुख दानी ॥
पर उपकारी जन हितकारी, गुरु के आज्ञाकारी ।
औगुन त्यागी, गुन के ग्राही, दया भाव चित धारी ॥
निज चित सोधें मन परबोधें, जीव दोष नहिं दृष्टी ।
अपने भाव में बरतें निश दिन, करें दया की वृष्टी ॥
मोह माया और छल चतुराई, छोड़ें भूल विकारा ।

दुख कलेश सह अपने सिर पर, जीव का करें सुधार ।
भव दुख भंजन काम निकंदन, जम से दें छुटकारा ॥

इस शब्द में आगे कहते हैं :—

तू फकीर बन तू फकीर बन, तू फकीर बन भाई ।
मैं भी तरूं फकीर चरन लग, ऐ फकीर ! सुखदाई ॥

अब तुम सोचो ! फकीर या साधु की कितनी महिमा है । यह फकीर और साधु संसार में प्राकृतिक व्यवस्था, माँग और पूर्ति (Demand and supply.) के अन्तरगत प्रगट होते हैं । इनको स्वयं पता नहीं होता कि वह किस काम के लिये दुनियां में भेजे गये हैं । मांग और पूर्ति का नियम है । कुदरत ने जब कोई काम किसी से लेना होता है वह मौज ही उसके दिमाग को हिलाती है । इसलिये मैं यह समझता हूँ कि जो इस सम्मेलन या All world religious Conference का ख्याल जो सुशील कुमार जी के दिमाग में आया या संत कृपाल सिंह उनके साथ सम्मिलित हुए यह क्यों हुये ? यह इनके वश में नहीं है । इस ओर खैंचे जा रहे हैं जैसे मैं खेंचा जा रहा हूँ । हम कुदरत में औजार हैं । कुदरत या जैसी मौज होती है हर जीव को वैसा करने के लिये विवश करती है, अच्छा हो या बुरा हो ।

इस ख्याल से मैं इन महापुरुषों की बड़ी कदर करता हूँ । संत कृपाल सिंह हैं यह गुरु के आज्ञाकारी हैं । श्री सुशील कुमार जी के सम्बन्ध में मैं उनकी हिस्ट्री जानता नहीं कि वे इस काम की ओर क्यों आकर्षित हुये । या तो अपने मन के भावों के प्रभाव से या कुदरत ने इनके दिमाग को हिलाया अथवा वह अपने गुरू की आज्ञा वश करते हैं, मगर संत कृपाल सिंह को मैं जानता हूँ । हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज उनके सतगुरु थे । वह पत्र जो बाबा सावनसिंह जी ने संत कृपाल सिंह को लिखा था वह 'दयाल' मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ था । इससे मैं अनुमान लगाता हूं कि बाबा सावनसिंह जी ने संत कृपाल सिंह को यह लिखा था कि एक प्लेट फार्म बनाओ । उसमें जगत के उपकार के लिये काम करो । शायद वह

संस्कार जो उनको वहाँ से मिला उस से काम करते हैं।

मैं क्यों यह काम करता हूं। मेरे जिम्मे यह ड्यूटी है:—

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।
दुखी जीव को अंग लगा कर, लेजा गुरु के देशा'।
तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम-दान दे दानी॥

एक तो यह आज्ञा है दूसरी यह है—

तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल स्नेही॥

तीसरी आज्ञा यह है कि जीवों को भवसागर से पार ले जओ।

चौथी आज्ञा है:—

जग के प्राणी रूप हैं तेरा, मेट दे इनका तपना॥

मैं सच्चाई पसन्द मनुष्य हूं। सोचता हूं कैसे किसी की तपन को मेटूँ। कैसे अबल निबल अज्ञानी जीवों के दुखों को मेटूँ! कैसे जगत कल्याण का काम करूं! यह एक प्रश्न है जो मेरे अन्दर पैदा हुआ। इसके अतिरिक्त दाता दयाल ने सुनाम स्टेशन पर सन १९३३ ई० में आज्ञा दी थी कि फकीर! चोला छोड़ने से पहिले शिक्षा को बदल जाना। चूंकि मुझको चौथे विश्व धर्म सम्मेलन का ख्याल मिला, मैंने सोचा कि यह उपस्थित महात्मा लोग जो विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के लीडर हैं, गुरु हैं उनको अपना अनुभव वर्णन कर जाऊं कि मजहब या धर्म क्या है और वह क्या सिखाता है।

पहिली बात जो आज मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि दुनियाँ ने तथा इन धर्म सम्प्रदाय वालों ने उस खुदा, ईश्वर को मस्जिद, मंदिरों, गिरजाघरों, और गुरुद्वारों में माना हुआ है। तुम देखो! युरेसलेम में एक मसजिद किसी ईसाई ने जलादी। उस का परिणाम यह हो रहा है कि सब इस्लामी देश, अरब देश इस क्रोध में आकर एक संगठन बना रहे हैं

जाय । यदि मुठभेड़ जोर पकड़ गई तो तुम बताओ कि देश में या मानव जाति की क्या दशा होगी । यह एक सोचने की बात है । मैं तो शायद विश्व धर्म सम्मेलन में जा सकूँ या न जा सकूं, मुझ को अवसर कुछ कहने का मिले या न मिले मगर दुनियां यह सोचे कि मसजिद की ईंट टूट गई, मंदिर की मूर्ति टूट गई, ग्रंथ साहब का एक पृष्ठ फट गया । तो खून की नदियां बह गई । क्या ईश्वर यहाँ है ? इस समय इस विश्व धर्म वालों की ओर से इकट्ठे हुये महापुरुषो ! अपने मन में आप सोचिये । यह धर्म नहीं है । यह अज्ञान है ।

कल किसी ने मुझे एक गाथा सुनाई थी । दाता दयाल की लिखी हुई थी कि नारद मुनि और शैतान जा रहे थे नारद मुनि संसार के कल्याण के लिये कुछ उपाय सोचते थे । शैतान ने कहा कि भई मेरे पास तो एक ही उपाय है । वह केवल उंगली का एक इशारा ही है । बस ! और मैं तो अपना तमाशा दिखा देता हूँ । मेरा काम तो उंगली के एक इशारे से होता है । उसने पूछा—किस तरह ? उसने कहा चलो दिखाता हूं । किसी हलवाई की दुकान पर घी की कढ़ाई चढ़ी हुई थी । पास ही चाशनी रक्खी थी । उसने चाशनी में से एक उंगली उठा कर दीवार पर लगादी और नारद जी से कहा कि खड़े हुये तमाशा देखते रहो । उसमें था मिठास वहाँ मक्खियाँ आ गईं, कीड़े आ गये । छिपकली आई । उसने उनको खाना चाहा । हलवाई की एक बिल्ली भी थी वह छिपकली पर झपटी । एक कुत्ता था । वह बिल्ली पर झपटा । उनके आपस की झपट में बिल्ली कढ़ाई में जा गिरी जिस से कढ़ाई से घी छलक कर आग में जा पड़ा । आग लग गई । ज्यों ही आग फैली उसके साथ ही कहीं बारूद का ढेर पड़ा हुआ था, उसको लगी । सारा शहर जल कर नष्ट हो गया ।

तो यह जितने धर्म सम्प्रदाय वादी है इस समय सत्यता की शिक्षा नहीं देते या उनको ज्ञान नहीं है । भौतिक जगत में ईश्वर को मान कर उसको स्थूल रूप दे देकर उसके पुजारी हैं । इस संसार में अज्ञान फैलाते हैं । फिर

ऐ विश्वधर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले महात्माओ ! और संतो के अनुयायीओ ! तुम स्वयं सोचो ! इस समय हम पर जितनी आपत्तियां हैं वह यह हैं कि हमने भौतिक जगत को अपना आइडियल् या आदर्श बनाया हुआ है । मैंने जीवन उस मालिक के मिलने और असली मंजिल पर पहुंचने के लिये खोया है । मैं दावा तो नहीं करता । आप जितने सम्प्रदायवादी हो, ऐ महात्माओ ! मैं यह समझ कर कि मैं विश्व धर्म सम्मेलन में आप लोगों को कुछ कह रहा हूं- कहता हूं । वह जो मालिक है आप सब कहते हैं कि वह एक है । परम तत्व आधार एक है । इसका ढिंढोरा पिटाते हैं । कुरान शरीफ में तो लिखा है कि —लाइलाइल इल्लाह सिवाय एक मालिक के और कोई नही ।

वह मालिक तो तुमको उस समय मिलेगा जब तुम अपने आप को एक करके लय हो जाओगे । इस दुनिया में तो वह मालिक है ही नहीं । मैं कहा करता हूँ कि यदि मसजिद मैं खुदा होता तो पाकिस्तान के हमले से पचास आदमी जो काश्मीर में नुमाज पढ़ रहे थे, वह क्यों मर जाते । गिर्जाघर में यदि खुदा होता तो अम्बाले में साढ़े तीन सौ वर्ष पुराना गिर्जाघर पाकिस्तान के बमों से क्यों नष्ट होता खुदा या मालिक यहाँ नहीं रहता है । यह नई थ्योरी है मेरी । यह मेरे जीवन की खोज का परिणाम है ।

यदि वह मालिक है और तुम उसको मिलना चाहते हो तो अपने आपको अपने देह अपने मन तथा सबसे अलग करके एक में लय हो जाओ फना फिल्ला हो जाओ तो तुम, हम समझें कि, शरीर एक मौडिल है । जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है । जहां तुमने असली खुदा में एक होना है, वह तुम्हारी खोपड़ी के अन्दर एक स्थान है । वहाँ तुम सबको भूल करके ठहर सकते हो । इसी तरह से वह खुदा ब्रह्माण्ड में सौर्यमण्डल हैं, सूर्य है, चन्द्रमा हैं, तारागण हैं, लोक लोकान्तर हैं । इनके ऊपर एक केन्द्र है उस खुदा का । वह तो वहाँ रहता है : राधास्वामी मत वाले भी कहते हैं कि सात गगन से परे हैं । मुसलमान भी सात आकाशों से परे बताते हैं । हर एक सम्प्रदाय ऐसा ही कहता है मगर वह जो सच्ची बात मजहब

कहता है उसका उपदेश कोई नहीं करता । मैं उसका प्रमाण देता हूँ ।

दुनियाँ में जितना भौतिक पदार्थ (Gross matter) है इसके बनाने वाली सूर्य की किरण हैं । यदि सूर्य की गर्मी किरणों द्वारा यहां न आये तो दुनियाँ नहीं बन सकती । इसमें कोई जीवधारी उत्पन्न नहीं हो सकते । ईश्वर ऐसा न करे कि सूर्य यहाँ आजाय तो सब सृष्टि अग्नि हो जाय । इसी तरह से वह मालिक पूर्णरूप में यहाँ आजाय तो ऐ महात्माओं ! ! ऐ श्रोतागणो ! तुमको कहता हूँ, कि हम तुम कोई यहां न रहे । केवल एक मात्र परम तत्व या मालिक रह जाय । न खालिक रहेगा, न मखलूक रहेगा न खिलकत रहेगी, न कारण रहेगा न कारज रहेगा ।

फिर धर्म का उद्देश्य क्या है ? ईश्वर की पूजा । ईश्वर की पूजा और चीज है । ईश्वर से मिलने का रास्ता और है । तो ईश्वर की पूजा क्या है ?

वह किरण जो हमारे अन्तर, तुम उसे सुरत कहो, आत्मा कहो, या उस इस मालिके कुल, जाते खुदा, परम परम तत्व की किरण इस भौतिक जगत में मानव शरीर में आई हुई है, इसकी पूजा यह है कि मनुष्य केवल मनुष्य की सेवा करे ।

श्री सुशील कुमार मुनि ! श्री संत कृपाल सिंह ! मैं शायद आपको इस विश्वधर्म सम्मेलन में कुछ न कह सकूं । अब कह रहा हूं । यदि आप लोगों ने सच्चाई का बीड़ा देश के अन्दर उठाया है और दुनियां को एक प्लेट फार्म पर लाने की इच्छा है तो उसका एक तरीका मेरी समझ में आया है । धर्म का असली उद्देश्य है मनुष्य मनुष्य की सेवा करे और अपने स्वरूप में लय हो मगर यहां तो अब मनुष्य मनुष्य के विरुद्ध तोप बन्दूक लिये फिरता है । क्या हो रहा है ? आज ही रेडियो में सुनी कि लिबनान की हुकूमत का तख्ता पलट गया । मिलिटरी का राज हो गया । पाकिस्तान में क्या हुआ ? मिलिटरी का राज हो गया । अब तो यहां राज उसका है जिसके हाथ में गोली है या शक्ति है । यदि तुम कुछ कर सकते हो तो सच्चा ज्ञान दो । यही दाता दयाल के शब्द में लिखा हुआ है ।

ज्ञान दाता ज्ञान दीजे, ज्ञान के भंडार से ।
ज्ञान देकर मुक्ति दीजे, जग के कारागार से ।।

मैं ज्ञान दे रहा हूँ । जानते इस ज्ञान को श्री सुशील कुमार भी है । श्री सत कृपाल सिंह भी जानते हैं । और भी सब जानते हैं मगर परिस्थितियों के कारण प्लेट फार्म पर खड़े होकर निर्भयता से सचाई को प्रगट नहीं करते धर्म सम्प्रदायों के जो लीडर हैं, मौलवी हैं, पंडित हैं, संत हैं, गुरू हैं, यह भी शक्ति नहीं रखते । विवश हैं क्योंकि इनको अपना मण्डल या दायरा स्थित रखना है ।

हम धर्म सम्प्रदाय वाले क्या ! दुनियादार क्या ! लोक लाज में आये हुये हैं । ऐ हिन्दू ! तू हिन्दू बना हुआ है । मत छोड़ हिन्दूपन को । ऐ मुसलमान ! तू मुसलमान और मौलवी बना हुआ है । मत छोड़ बाहरी बातों को । क्यों ? क्योंकि जीव का उद्धार करने के लिये, उसको ज्ञान देने के लिये उसको समझाने के लिये उस जैसा बनना पड़ता है ।

जब तक दूसरों के जैसे विचार वाले नहीं होगें, उसकी दृष्टि को ऊँची नहीं करोगे, दूसरे तुम्हारी बात सुनेंगे नहीं । वही अच्छी बात से अच्छी बात कुरान शरीफ़ में लिखी हुई हैं । अच्छी बात वेद शास्त्रों में लिखी हुई हैं । किसी हिन्दू ने कहदी, मुसलमान व ईसाई उसे नहीं मानेगा, क्योंकि उनको टेक है । इस समय जो महापुरुष इस सम्मेलन में आये हैं उनसे निवेदन करूंगा कि तुम हिन्दू होते हुये हिन्दुओं को स्वतन्त्र विचार वाला बनाने की शिक्षा दो ।

मुसलमान रहते हुये, दाढ़ी रखते हुये तुम स्वतन्त्र विचार वाला बनाने की कोशिश करो । सिक्ख रहते हुये कड़ा कच्छा पहिने हुये, बाल रखते हुये सिक्खों को स्वतंत्र विचार वाले बनने की शिक्षा दो । जैन होते हुये, मुंह पर कपड़ा बाँधे हुये तुम जैनियों को स्वतन्त्र विचार की शिक्षा दो

कोई समय और भी आयेगा जब विश्वधर्म सम्मेलन जो होंगे उनमें कुछ और बात होगी । अभी इसका आरम्भ है । जीवों को केवल स्वतन्त्र विचार बनाने की आवश्यकता है मैं स्वतन्त्र विचार वाला हूँ । मैंने राधा-

स्वामी मत से शिक्षा प्राप्त की है। संतों के मार्ग से शिक्षा मिली है। मैं राधास्वामी मत या नाम को छोड़ता नहीं। मैं संतों का सम्मान करता हूँ। उन सिद्धान्तों पर चलने वाला हूँ मगर मैं स्वतन्त्र विचार वाला हूँ। (महर्षिशिव) जो राधास्वामी मत के थे और वह पंथाई थे मगर वह पंथ से स्वतन्त्र थे। पंथों को स्वतंत्र विचार वाला बनाने के लिये पंथ में रहते हुये उन्होंने काम किया। उनका एक शब्द सुनाता हूं:—

आया आया आया आया आया मैं, सतगुरु के सतसंग।
अच्छा किया सतसंग में आया, तज कुसंग चित सुसग लाया॥
त्याग मोह मद मान और माया, मन नहिं हो अब भंग,

मैं अपने मन से यह समझ रहा हूँ कि मैं विश्वधर्म सम्मेलन जो १९७० में होगा, उसमें बैठा हुआ हूं और जितने आदमी मेरे यहां सत्संग में आये हैं उनको एक सच्चे महापुरुष का जो संसार में मेरे लिये ज्ञान देने के लिये प्रकट हुये थे, उनका वचन सुनाता हूँ। आपको क्या करना है अच्छी बात को ग्रहण करो, बुरे विचारों को छोड़ दो।

सुन हित चित से गुरू की बानी,
मनन विवेक सहित कर प्रानी।
सत को गह कर हृदय में ठानी, असत से होजा असंग॥

मैंने आपको बताय कि वह मालिक यहां नहीं रहता। वह सत्य है और ऊपर है। इस जीवन में तुम्हारा जो अपना निज स्वरूप है वह सत्य है इस जीवन में रहते हुये तुम जो वास्तव में सुरत रूप, वह सत्य है सृष्टि के अन्दर जो तत्व लोक लोकान्तरों से परे है, पिण्ड और ब्रह्माण्ड से परे जो निजस्वरूप या जात है, वह सत्य है। इसको समझिये।

बाहर सत्संग गुरू का कीजे, अन्तर सुरत शब्द में दीजे।
साधन का रस आनन्द लीजे, जैसे पिये कोई भंग॥

मालिक या खुदा के साक्षात्कार करने वाले अपने अन्तर में चलते हैं उसका रास्ता बाहर नहीं है। यही दाता दयाल कहते हैं:—

पक्षपात की राह न चलना,
द्वेष अगिन में कभी न जलना !
नहिं तू हाथ शोक का मलना,
मन नहिं उठे तरंग ॥

भक्ति भाव से सत्संग करना, बद्ध भाव सिर भार न धरना।

बद्धभाव—अपने आपको किसी धर्म पंथ के साथ बाँधो मत ! मेरी प्रबल इच्छा है कि यह जो बड़े बड़े धार्मिक लोग आस्ट्रेलिया जर्मन आदि बड़े बड़े दूर देशों से और भारत के बड़े बड़े धार्मिक लीडर जो इकट्ठे हुये हैं उनको अपना अनुभव बताजाऊँ। मैं कौन हूं बताने वाला ! यह शब्द बता रहा है। क्या करना है तुमको।

भक्ति भाव से सत्संग करना, बद्ध भव सिर भार न धरना।
फिर नहिं छूटे जन्मना मरना, सीख साधू का ढ़ंग ॥

साधु कौन होता है ? परोपकारी, जन हित कारी। मैंने शब्द पढ़ कर सुनाया है कि यह जितने महात्मा इकट्ठे हो रहे हैं, यह सब साधू हैं कोई फकीर हैं, कोई पीर है, कोई पोप है कोई कुछ है उनके लिये यह संदेश दाता दयाल कासुना रहा हूँ। यह मेरा संदेश नहीं है यह उनका कथन है

संग भया जब बन्ध का कारण,
फिर क्या संगत करे उवारन ॥
कैसे हो फिर तरन और तारन, माया करे दिल तंग ॥
सुमिरन गुरू के मुक्त रूप का, ध्यान हो निर्वाणी अनूपका।
भजन हो शब्द में शब्द कूप का, सहित प्रतीत उमंग ॥

आप सब धर्मों के लोग इकट्ठे हुये हो। यदि तुम अपने धर्म या सम्प्रदाय की टेक गलत रूप से रक्खोगे, तुम दुनियां में शान्ति नहीं ला सकते। तुम दुनियां को एक प्लेट फार्म पर नहीं ला सकते। यह मैं क्यों कहता हूँ।

महात्मा गांधी अपने समय के अवतार थे। उन्होंने हिन्दू और मसलमानों की एकता व अछूत जातियों को साथ मिलाने के लिये बड़ी

कोशिश की, यहाँ तक कि सन १९२१ ई० में जामा मसजिद में हिन्दू और मुसलमानों ने सन् १९४७ ई० में एक दूसरे के सिर काटे। महात्मा गाँधी यह क्यों नहीं बदल सके ? क्योंकि महात्मा गांधी स्वयं हिन्दू विचार धारा के थे। स्वतन्त्र अवश्य थे मगर हिन्दू पक्ष रखते थे।

यह बात निर्भय होकर कहना चाहता हूं। मैंने सन् १९४२ में जब महात्मा गाँधी के आर्टीकिल निकले; वह अपनी सभा में कुरान शरीफ़ की आयतें, गीता के मन्त्र, अंजील के कुटेशन Quotation, दिया करते थे। उस समय मेरे चित में विचार आया कि यह स्वय हिन्दू बिचार धारा के मैं, केवल स्वराज प्राप्ति के लिये इनकी एकता चाहते हैं। उस समय मैंने महात्मा गाँधी को एक चिट्ठी लिखी थी अपने मकान के आगे, दिन के दोहहर को आम के वृक्ष के नीचे बैठे हुये। वह मेरा अन्तरीय विचार Reading था। मैंने यह क्यों कहा था ? जब तक जो कहने वाला है वह स्वयं क्रियात्मक रूप से निर्बन्ध नहीं हैं, स्वयं किसी का टेकी है उसका प्रभाव दूसरों पर नहीं हो सकता। लालच या स्वराज्य का ख्याल देकर हम दुनियां को समान विचार वाली थोड़े समय को या अस्थाई रूप से बना सकते हैं मगर क्रियात्मक रूप से ऐसा नहीं बना सकते। क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्र बनाने का संतों के पास तरीका है जो मनुष्य की आत्मा को उस मालिक परम पुरुष का अंश बताते हैं और दुनियाँ में जीवन बिताने का रहस्य बताते हैं और उस मालिक तक पहुंचाने की विधि बताते हैं।

यह दुनिया है। जिन महापुरुषों ने इस असली और सच्ची एकता की नींव डाली। उनका कोई नाम नहीं लेता। श्री बाबा सावन सिंह जी ने हिन्दु सिक्खों के भेद भाव को मिटाने के लिये क्रियात्मक रूप से काम किया। राधास्वामी मत ने काम किया, दाता दयाल महर्षि शिव ने लगभग चार पाँच हजार पुस्तकें लिखीं। हर सम्प्रदाय पर प्रकाश डाला। क्या कभी रेडियो ने या किसी गवर्नमेंट ने इनका कोई नाम लिया ? अब गुरू नानक साहब का दिन मनाते है। मुबारिक है यह ख्याल। वह उच्च कोटि के संत

थे मगर वह इस लिये मनाते हैं क्योंकि उनकी यह पोलीटिकल लाइन बनी हुई है। उनके हर से, उस संगठन के रौब से, यह गर्वनमेंट भी इतना खर्च कर रही है। यह गुरु नानक साहब का पांचसौवां वर्ष है। यह मैं सच्ची बात कह रहा हूँ।

सांची बात कबीर कहे। सबके मन से उतरा रहे॥

दुनियाँ ताकत के आगे झुकती है। जत्था बन्दी के आगे झुकती है। आज कल लोग अपने मन्तव्य को पूरा करने के लिये गाँधी जी की लाइन पर जो मरने व्रत रखते हैं वही सफल हो रहे हैं यह अज्ञान है अनसमझी है। इससे देश में शान्ति नहीं ला सकते दुनियाँ को चेत नहीं है। तब ही तो मैं कहता हूं कि दुनियाँ में शाशन में संत आने चाहिये। स्वतन्त्र विचार वाले तथा निर्भय लोग आने चाहिये। जो व्यक्ति स्वयं बंधा हुआ है वह दूसरों को निबंध कैसे कर सकता है। फिर ध्यान से निबन्ध के शब्द को पढ़ो। वह कहते हैं:—

संग भया जब बन्ध का कारण,
फिर क्या संगत करे उबारन।
कैसे हो फिर तरन और तारन, माया करे दिल तंग॥
सुमिरन गुरु के मुक्त रूप का,
ध्यान हों निरवाकी अनूपका।
भजन हो शब्द में मैं शब्द कूप का, सहित प्रतीत उमंग॥

यह जितने झगड़े इस समय हैं यहु क्या हैं? यह गुरू के रूप को न जानने के कारण हैं कोई राम के रूप का ध्यान करता है, कोई कृष्ण के रूप का, कोई बाबा फकीर के रुप का, कोई हुजूर सांवले शाह के रूप का, कोई और किसी का। गुरु का रूप तो वही है:—

सुमिरन गुरु के मुक्त रूप का।

मुक्त रूप का! जो व्यक्ति ऐसे गुरु का दिन मनाता है जो स्वयं किसी पंथ का आचार्य या गुरु है, किसी पंथ का संचालक है, वह निर्बन्ध कैसे हो सकता है। गुरु आइडियल है, ज्ञान का स्वरूप है, निर्बन्ध का रूप

है । जब तक किसीने ऐसे गुरु को जिसका वह ध्यान करता है उसको निरबंध नहीं माना हुआ, उसको यह समझा है कि यह राधास्वामी मत का गुरु है, उसको यह समझता है यह सिक्खइज्म का गुरु है, उसको यह समझता है यह जैन मत का गुरु है, वह बन्धन से स्वतन्त्र कैसे हो सकता है । सोचलो ।

मत मतान्तर रगडा झगड़ा, बांधे काल कर्म का छकड़ा ।
बातों का न बना तू बतंगडा, कीट से होजा भृंग ॥

अब इन सम्मेलनों में, सत्संगों में, कानफ्रैंसों में क्या होता है ? बातों का ही बतंगड़ बनता है । केवल जुबानी जमा खर्च होता है । क्रियात्मक रूप नहीं होता ।

एक एक शब्द के ऊपर जिसकी जैसी जैसी इच्छा हो लेक्चर दे देकर फिरते रहो ।

क्यों आवे गुरु की शरनाई, आपहि कर्म फंद कट जाई ।
क्यों बंधा पंथ की रसरी भाई, सुन सतगुरु प्रसंग ॥
सतसंगी हो साधू बनजा, घर में साधन कर नहि बन जा ।
घट में धंस सुन्न आसन जा, त्याग भरम के अंग ॥
जो नहीं ऐसा करता आई, फिर सत्संग नहीं सुखदाई ।
तज दे यह जग अगमा पाई, ज्यों केंचुली तजे भुजंग ॥
पिंड की धज्जी धज्जी उड़ादे,
खंड ब्रह्माण्ड के टुकड़े बनादे ।
सत को सत से सहज मिलादे, ज्यों नद नाला गंग ॥
राधास्वामी दीन दयाला, सब जीवन के हैं प्रतिपाला ।
महर दया से करैं निहाला, होजा अनन्य अनंग ॥

ऐ विश्व धर्म सम्मेलन के महात्माओ ! तथा अन्य सज्जनो ! जो सचाई मैंने अनुभव की है उसीका सदेश आपको सुना रहा हूं । दावा कुछ है नहीं ।

—0—

गृहस्थ जीवन

जिन्दगी तलाश ये सुख में बीत गई मेरी।
उलझनों और अनुभवों में बसर हुई मेरी॥

इस जीवन की उलझनों से गुजरता हुआ आया। हुजूर दातादयाल महर्षि जी ने सहारा दिया और काम दे गये। क्या ? काम जगत के कल्याण का। यह नहीं बता गये कि क्या करूँ। मेरे पास केवल अपने जीवन का अनुभव है। गलत भी हो सकता है और ठीक भी। अपने कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन काम करता हूं।

करे करावे आप ही आप। मानुष के नहिं कुछ ही हाथ॥

मैं गृहस्थी हूं। भाई, पुत्र, पुत्रियाँ हैं। पिताजी की मृत्यु उस समय हुई जब मैं ५० वर्ष का था। गृहस्थ जीवन का मुझे अनुभव है। गृहस्थ जीवन का सुख केवल उस दशा में है जैसा कि तुलसीदास जी की चौपाई से प्रगट है।

जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना। जहां कुमति तहाँ विपति निदाना॥

ठीक इसी तरह मेरी समझ में आया है परन्तु इस सुमति को कायम कैसे रक्खा जाय, यह एक बड़ा भारी प्रश्न है। कहना अथवा थ्यौरी और बात है और क्रियात्मक रूप में सुमति का बना रहना और बात है। असली सुख तो मनुष्य के अपने अन्तर निज स्वरूप में है।

यदि अपने निज स्वरूप को संयम में रक्खा जाय तब ही अच्छाई की सूरत हो सकती है अन्यथा नहीं। निज सुख तो केवल अनुभवी पुरुषों और पूर्ण त्यागी पुरुषों को जो बिवेक से त्यागी हों, हो सकता है। वह राजी व रजा अर्थात् भगवत इच्छा पर रहते हैं परन्तु निज स्वरूप का प्रतिबिम्ब मन और इन्द्रियों पर पड़ता है इसके कारण प्रत्येक स्त्री पुरुष प्राकृतिक नियम के अनुसार शारीरिक और मानसिक जीवन में पारस्परिक प्रेम करने के लिए विवश हैं और इस पारस्परिक प्रेम के जीवन, जो पति और पत्नी में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है, का नाम गृहस्थ जीवन है।

प्रत्येक पंथ और सम्प्रदाय में इस प्राकृतिक भाव को उपयुक्त (मौज)

और अनुकूल रखने के लिए विभिन्न प्रकार के धर्म अथवा नियम बनाये हुए हैं। स्त्री और पुरुष के प्रेम में एक भाव है जो न केवल मनुष्यों में किन्तु पशुओं में भी है। वह यह है कि कोई नर नहीं चाहता कि उसकी मादा उसके अतिरिक्त किसी दूसरे के अधिकार या पंजे में जाय। इसी प्रकार कोई मादा या स्त्री यह नहीं चाहती कि उसका नर किसी और स्त्री की ओर आकर्षित हो। इस प्राकृतिक भाव को दृष्टि में रखते हुए हमारे पूर्वजों ने स्त्री के लिए नियम बनाये और इस नियम के साथ अन्य कर्तव्य जो गृहस्थ जीवन के लिए लाभदायक हो सकते थे बनाये।

प्राचीन काल में धर्म अथवा नियम के बनाने वाले मनुष्य थे। चूँकि वह पुरुष थे उन्होंने स्त्री के भावों को पूर्ण रूपेण नहीं समझा। अपने अर्थात् पुरुषों के भाव और विचारों को दृष्टि में रखते हुये स्त्रियों के लिये तो पतिव्रत धर्म की नींव रख दी परन्तु स्वयं एक से अधिक विवाह करने लगे, यहाँ तक कि धर्म के आधार पर सती होने का नियम प्रचलित रहा। यद्यपि यह अधूरा धर्म था परन्तु अधूरे धर्म ने भी मानव जाति को विशेषकर भारतवर्ष में प्राण निछावर करने की प्रथा फैला दी तथापि गृहस्थ जीवन बहुत अंश तक सुखदायक रहा। इस सुख को अधिकतर पुरुषों ने ही भोगा और स्त्री जाति ने इस धर्म से आत्मानन्द प्राप्त किया, जैसा कि पतिव्रता स्त्रियां प्रत्येक प्रकार से त्याग करती हुई दुख सुख को एक समान रखते हुये अपने जीवन का बलिदान कर गईं। राजपूतों का इतिहास व अन्य पतिव्रताओं का जीवन इसका साक्षी है।

समय ने पलटा खाया। इस नियम का विरोध हुआ और होना भी अनिवार्य था। वह पतिव्रत धर्म समाप्त हुआ। स्वतन्त्रता का युग आया। स्त्रियां विशेष कर इस नये युग में अपनी इच्छा पर चलने लगीं। पुनर्विवाह चालू हुये। तलाक (**Divorce**) प्रारम्भ हुआ। जहाँ विवाह अपनी इच्छा और प्रेम से किये गये वह भी विशेष विशेष दशाओं के अतिरिक्त सुखदाई न हुये। इसके विरोध की विचार धारा ने स्वामी दयानन्द को प्रगट किया जो विधवा विवाह और नियोग के उत्पादक थे। माँग और पूर्ति का नियम प्रकृति

में है। हजरत मोहम्मद साहब ने जहाँ एकत्व का विचार दिया वहाँ एक मनुष्य को जो अनेक विवाह करने का अधिकार समझता था चार विवाह करने तक की रोक लगा दी और वह भी विशेष अवस्थाओं में।

अब वर्तमान शासन ने भी इसी प्राकृतिक नियम के आधीन एक ही विवाह करने तक का नियम बना दिया और दो पत्नी वालों को सरकारी नौकरियों में नहीं रहने दिया जाता और साथ ही तलाक की भी सबको आज्ञा दे दी। दूसरे देशों में भी यही रीति है परन्तु जन-साधारण सुखी नहीं है।

इन बातों से गृहस्थ का सुख नहीं मिल सकता। मेरी तीन पुत्रियाँ मेरे संस्कारों के कारण पतिव्रत धर्म पर चलीं परन्तु मैंने देखा है कि उनका जीवन सुखमय नहीं रहा। इसलिये साहस नहीं होता कि पतिव्रत धर्म की विचार-धारा छोड़ जाऊँ, परन्तु इसके बिना जीवन और भी दुखदाई होगा। स्त्रियों को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी जाती है। क्या पुरुषों के लिए कोई नियम नहीं है कि वह जहाँ चाहें फिरें और जो जी में आये करें? यदि स्त्रियों को भी ऐसी ही आज्ञा दी जाय और वह हो भी रहा है तो भी जीवन आनन्ददायक नहीं रह सकता। केवल कामाँग की तृप्ति कुछ नहीं है। यह क्षणिक दो मिनट का सुख है। अन्य स्त्रियों के मेल मिलाप से एक क्षण मात्र का आनन्द मिलता है। इसलिए इस समय किसी ऐसे धर्म या नियम की आवश्यकता है जो गृहस्थ जीवन को सुख से व्यतीत करा सके। शादी विवाहों में दहेज का रोग है जो निर्धन बाप लड़के वालों को नहीं दे सकता तो लड़के वाले लड़कियों को तंग करते हैं। गृहस्थियो! क्या तुम्हारे इस वर्तमान कष्ट में तुम्हारी कोई मुक्तिदाता महात्मा सहायता कर सकते हैं? मैंने बड़े बड़े व्याख्यान दाताओं को, महात्माओं को जो गृहस्थी हैं, इस रोग से मुक्त नहीं देखा। वर्तमान परिस्थितियाँ, लड़के और लड़कियों की इकट्ठी शिक्षा, सोशल संगठन आदि आदि के बिना भी निर्वाह नहीं है। आजकल स्त्री यदि सोशल है भीतर बाहर फिर सकती है, मेल मिलाप रखती है तो उसका पति उन्नति कर सकता है। कई स्त्रियाँ बड़े बड़े पद पर आ गई हैं पुरुषों को उनके आगे झुकना पड़ता है। बराबर अधिकार होना आवश्यक है। मैं

इनका विरोधी नहीं हूँ परन्तु गृहस्थ का सुख नहीं मिल सकता। मैंने बड़े बड़े पुरुष और स्त्री धनवान और पदाधिकारी देखे हैं जो प्रत्यक्ष में लोगों की दृष्टि में विद्वान हैं परन्तु उनका घरेलू जीवन बहुत ही दुखमय है। ताली दोनों हाथों से बजा करती है। यहां न केवल पुरुषों ही का दोष है वरन् स्त्रियों का भी है। सम्भव है कि सन्तों ने इसी अनुभव के आधार पर इस संसार को शोकागार समझ कर अपना और अपने अनुयाइयों का ध्यान सतपद की ओर लगाया हो। यह काल और माया का चक्र है, इससे निकलना सरल बात नहीं है। फिर भी थोड़ा बहुत मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर वर्णन कर जाता हूं। भावी समय में मुख्य मुख्य नियम बनाइयेगा। इस समय यह अनुमति है।

सुनो न सुनो मैं दीवाना बनकर मजबूर हूँ।
कह रहा हूँ गुरु आज्ञा के वश वे कसूर हूं॥

हाँ! विचार की फिलोसफी की मैंने परीक्षा की। जिसके घर में ईर्ष्या, द्वेष और घृणा लोगों के हृदय में है और जहाँ पत्नी पति पर या पति पत्नी पर, भाई भाई पर, बाप बेटे पर, बेटा बाप पर अनुचित दबाव डालकर एक दूसरे से काम लेता है वह घर तबाह हो जाता है। यह मेरा निज अनुभव है। अभी हाल का एक उदाहरण देता हूं। आज २२ दिन हुए मेरे एक मित्र ने मेरे सामने अपना छोटा बच्चा पेश किया। उसकी पत्नी का विचार था कि उसको साया का रोग है क्योंकि बच्चे को सूखे का रोग हो गया था। मैं उनके घर के वृतान्त से परिचित था। मैंने कहा कोई साया नहीं है। माना कि यह भी ठीक होता है। पाठको! सुनो! साया छोटे बच्चों पर पड़ता है। वह कैसे? जब किसी स्त्री का छोटा बच्चा मर जाता है और वह बड़े शोक में होती है तो जब वह किसी छोटे बच्चे को देखती है तो उसके हृदय में द्वेष, डाह और शोक के विचार जो उसके अन्तर से निकलते हैं, वह उस बच्चे पर प्रभाव डालते हैं। विचार एक पदार्थ है परन्तु उस बच्चे पर वह बात नहीं थी। मैंने फिर कहा कि तुम्हारी पत्नी घर के कामकाज के कारण इस छोटे बच्चे को उसकी बहिन को खिलाने को दे देती है परन्तु वह उसे

प्रसन्नता से नहीं खिलाती। तुम उस लड़की पर अत्याचार करते हो और बच्चे को खिलाने के लिए विवश करते हो। इस लड़की के विचार उस कोमल हृदय वाले बच्चे पर पड़ते हैं और प्रभाव डाल रहे हैं और यह अवस्था है। तुम इस बच्चे को अपनी पुत्री को खिलाने को मत दो। न इस पर इसके खिलावे के लिए अत्याचार करो। यह लड़का ठीक हो जावेगा। आज इस बात को १५ दिन हुए इस बच्चे का स्वास्थ्य रुपये में से चौदह आने भर ठीक है। इन अनुभवों के आधार पर मैं अनुमति देता हूँ कि गृहस्थियो ! अपने बाल बच्चो, स्त्री, पति, भाई बाप आदि से परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, अत्याचार और सख्ती मत करो अन्यथा इन विचारों का परिणाम तुमको आर्थिक कठिनाइयों, बीमारियों तथा अन्य प्रकार के कष्टों में डाल देगा। अब विश्व धर्म सम्मेलन वाले या जीवों के शुभ चिन्तक कोई नियम बना लें। मैंने सिद्धान्त वर्णन कर दिया। दातादयाल के ऋण से मुक्त हो रहा हूँ। ऐ गृहस्थियो सँभलो। प्रेम प्रीति का जीवन व्यतीत करो।

प्रेम के मार्ग में चलो प्रेम ही सच्ची औषधि है।
प्रेम ही नाम गुरू का प्यारा प्रेम ही नौ निद्धि है॥

मुझे लिखना नहीं आता आलिम हूँ नहीं फकीर एडीटर है ! जिन्दगी गुजारी खोज में मैंने फकीर कुदरत का मास्टर है।

फिर कहता हूँ कि ऐ गृहस्थियो ! तुम्हारा कल्याण प्रेम रूपी गुरू या राम ने करना है न कि किसी अन्य देवता और मनुष्य ने करना है।

—×—

असली भक्ति

समस्त धार्मिक क्षेत्रों में किसी न किसी प्रकार की भक्ति अनिवार्य है। संत फकीर भी भक्ति की पुकार कर गये।

भक्ति महातम सुन मेरे भाई, सब सन्तन ने किया बखान।

अर्थात् भक्ति की प्रधानता मानी गई है। मैं स्वयं इस मार्ग पर चला हूँ

और अब भी चलता हूं और अब भी चलता हूं। प्रत्येक प्राणी राम, कृष्ण शिव, गुरू, नाम, ईश्वर, परमेश्वर, साकार, निराकार, परम तत्व आदि किसी न किसी की भक्ति करता है, चाहे वह किसी रूप में हो। मन्तव्य यह है कि सम्पूर्ण जगत इस भक्ति से रिक्त नहीं है। मैं तो कहूंगा कि नास्तिक भी किसी न किसी रुप में भक्ति करता है। कोई किसी प्रकार इसको करे किन्तु इससे लाभ क्या है ?

प्रत्येक प्राणी जब अपने विचार से किसी प्रकार की श्रद्धा, विश्वास से अपने भाव को अपने इष्ट की ओर लगाता है तो उसको एक प्रकार का आनन्द मिलता है, ठहराव मिलता है अथवा एक प्रकार का सुख मिलता है, किन्तु यह मिलता तब है जब प्राणी की सुरत मस्तिष्क में इकट्ठी होती है अर्थात यह सुख या आनन्द वास्तव में प्राणी की सुरत अथवा विचार की एकाग्रता से मिलता है। बाह्य आश्रय जो प्राणी ने लिया है ह केवल एक उपाय है। इसके सहारे यह वस्तु प्राप्त होती है। विचार करो क्या यह गलत है ?

इसी कारण बारम्बार कहा जाता है कि सतपुरुष अथवा पूर्ण पुरुष का सतसंग करो, जो रहस्य बताकर अथवा भेद देकर तुमको सचाई और वास्तविकता बता दे और उन विभिन्न उपायों से जिनके सहारे तुम यह सुख आनन्द लेते हो तुम्हारे झगड़े, पक्षपात आदि दूर हों। इसलिये मुख्य भक्ति क्या हुई ? अपनी वृत्तियों को, विचार को, सुरत को अपने अन्तर एकाग्र करके आनन्द और सुख, शाँति का प्राप्त करना है।

यदि मतावलम्बी इस रहस्य को समझ जावें तो जितने धार्मिक उत्पात व झगड़े होते हैं दूर हो जायँ। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के समय आँख की पुतली तुरन्त ही ऊपर चढ़ जाती है। और उसका विचार, मन और आत्मा की धार मस्तिष्क की ओर आकर्षित होती है। तब उसको अपने अन्तर एकाग्रता के कारण प्रसन्नता और सुख मिलता है। अब झगड़ा किस बात का। चाहे कोई किसी को इष्ट बनाये। इस झगड़े को मिटाने के लिए संत इस कलियुग में प्रगट हुए। उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा देते हुए

यह बताया कि भाई मुख्य भक्ति सुरत को अपने अन्तर लगाना है और बस !

अन्तरीय सुख न तो कोई तुम्हारा इष्ट देता है न बाहर की कोई मूर्ति अथवा पुरुष वरन् वास्तविक सुख, आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता केवल मानवीय सुरत को एकाग्र करने में हैं। बाह्य इष्ट केवल एक उपाय है, किन्तु यह एकाग्रता बिना किसी आन्तरिक लक्ष अथवा इष्ट के नहीं मिल सकती। सुरत अथवा मन को एकाग्र करने के लिए अथवा ठहराने के लिए इष्ट अवश्य चाहिए। इसलिये प्रत्येक धर्म ने विभिन्न प्रकार के सुमिरन, ध्यान, जप अथवा इष्ट बताये और उन पर रोचक और भयानक बातें बता बताकर विश्वास और श्रद्धा को बँधाया जिससे कि अन्तर में एकाग्रता हो सके और प्राणी सुख आनन्द और मस्ती को प्राप्त कर सके। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने इष्ट की प्रधानता बताने के लिए दूसरों का खण्डन किया।

सन्तों ने विभिन्न परिस्थितियों, विचारों से जो झगड़े होते थे उनको दूर करने के लिए स्पष्ट शब्दों में सत्यता को वर्णन किया। ऐ प्राणी ! भक्त, भगवन्त और भजन तीनों ही तेरा अपना मन अथवा बिचार है। इस स्पष्टता से हानि भी है और लाभ भी है। हानि यह है कि प्राणी के विश्वास की न्यूनता के कारण एकाग्रता शीघ्र नहीं होती। वह समझता है कि यह मूर्ति चाहे कोई हो मेरी अपनी ही है इसलिए वह एकाग्र नहीं हो सकता है, क्योंकि आनन्द अज्ञान में है। ज्ञान में आनन्द नहीं है। चमत्कार, आन्तरिक बार्तालाप आदि सब अज्ञान में होता है। वैदिक ऋषियों ने इसलिये अपने अन्तर प्रकाश को इष्ट बतलाया है क्योंकि सृष्टि का कर्ता पुरुष यह प्रकाश ही है जिसका संकेत गायत्री और प्राणायाम मन्त्रों में विद्यमान है। जिन जिन महापुरुषों ने अपने अन्तर इस सावित्री रूपी प्रकाश की भक्ति की वह इस संसार में बहुत कुछ कार्य अपने और इस संसार के लिये कर गये। उदाहरणतः उन्होंने इस सावित्री रूपी प्रकाश की भक्ति से योग विद्या, ज्योतिष, आयुर्वेदिक अथवा अन्य विद्यायें उत्पन्न कर गये। वैसे भी जितने कला कौशल हैं वह सब माननीय मस्तिष्क के चमत्कार हैं।

हमारे मस्तिष्क में प्रकाश विद्यमान है क्योंकि हमारा जीवन स्वयं प्रकाश

से बना है और हमारे अन्तर में हमारी जान, प्राण प्रकाश और ताप ही है। जो प्राणी अपने आपको प्रकाश रूप बना सकता है उसमें सिद्धि शक्ति, संकल्प शक्ति आदि सब उत्पन्न हो जाती हैं। यह ऋषियों की भक्ति की विधि थी और उसकी शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती थी। जन साधारण ने इसे समझा नहीं केवल गायत्री मन्त्र ही की रट लगाई और अपने अन्तर प्रकाश का साधन नहीं किया। यदि देश में इस सावित्री रूपी प्रकाश को प्रगट करने वाले अधिक होते तो वह संसार की मानसिक अवस्था में परिवर्तन ला देते, परन्तु धर्म अन्य बातों की तरह रीति के अनुसार गाना, बजाना, व्याख्यान आदि तक ही सीमित हैं। कोई गीता का पाठ करते रहते हैं, कोई किसी पुस्तक का अथवा मन्त्र, शब्द आदि का पाठ करते रहते हैं और कोई कीर्तन ही करते हैं। यह समस्त कर्म मानसिक टिकाव और क्षणिक आनन्द तो देते हैं किन्तु इनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता है।

चूँकि प्रकाश अथवा सावित्री का कर्म फैलना है, अतः प्रकाश हर समय फैलता रहता है और इसका फैलना ही रचना का कार्य करता है, इसलिये प्रकाश और सावित्री के साधक प्रवृति मार्ग में ही रहते हैं, क्योंकि जो वस्तु प्रकाश में रहती हुई प्रकाश के साथ फैलकर इस भूलोक में विचर रही है अथवा खेल रही है, वह इस रचना के प्रभावों से निकल नहीं सकती है। इस कारण से निवृति मार्ग अथवा आवागमन से मुक्ति इस साधन से किसी को उस वक्त तक नहीं मिल सकती है, जब तक उस तत्व को जो प्रकाश में रहकर प्रकाश के खेल में फँसा हुआ है, प्रकाश से पृथक न किया जाय। इसके लिये शब्द योग है।

शब्द आकाश का गुण है। आकाश अग्नि से प्रकाश, प्रकाश से वायु, वायु से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसलिये जब तक कोई शब्द का अभ्यासी न होगा और शब्द को सुनते सुनते अशब्द गति, जो मुख्य तत्व है, में लय न हो जायगा यह असम्भव है कि वह इस रचना के खेल से मुक्त हो सके।

इसलिए यह सुरत शब्द योग ही केवल निर्वाण अथवा निवृति मार्ग

का सहायक हो सकता है। इसके अधिकारी बहुत ही कम होते हैं और न यह जन साधारण की वस्तु है।

अब चूंकि शब्द योग का क्रम चल निकला है परन्तु जन साधारण अधिकारी नहीं है, इस कारण इस मार्ग में भी त्रटियाँ आ गई हैं।

ऐ विश्व धर्म सम्मेलन वालो ! उठो और संसार से अज्ञान और अन्धकार दूर करने का प्रयत्न करो वास्तविक धर्म इस संसार में सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करने के लिए सावित्री रूपी आन्तरिक प्रकाश का साधन है। चाहे कोई हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन हो इस धर्म का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं है यह प्राकृतिक धर्म है और जो इस संसार से उपराम हो गये हैं, उनके लिए शब्द योग है। यह शब्द भी (अनहद) मनुष्य के आपे का अपना ही शब्द है, अपना ही नाम है।

यही नाम निज नाम है मन अपने धर लेय।

इस साधन से अनुभव तथा ज्ञान हो जाता है कि मनुष्य क्या है। मुझे जो अनुभव हुआ वह कहता हूं।

अनुभव हुआ मैं कौन हूं इक बुलबुला चेतन हूं दोस्तो।
जोत सबकी लामकानी, वे अन्त परमतत्व है दोस्तो ॥
रचना हुई प्रकाश फैला, उसने रचाया जगत को।
उससे हम सब बुलबुले बने, रिलमिल के जीवो दोस्तो ॥
क्यों भरमवश अज्ञानवश हो रहे हो अलहदा तुम।
एक ही तत्व से हम सब हैं निकले दोस्तो।
मजहब मिल्लत यंथ बनाकर तुमने डाली बंडियां।
मिट मिट के अब तुम मिटमार हुए कुछ होश करलो दोस्तो ॥
प्रगटा हूं जग में सार कहने कह रहा हूं बरमला।
गर न सँभले मर मिटोगे सुन लो प्यारे दोस्तो ॥

इस सावित्री रूपी प्रकाश का जो वास्तव में रचना का कर्त्ता है, स्वाभाविक गुण उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कार्य है। न कोई इसके कर्म को रोक सकता है न रोक सकेगा।

सत्संग

परम सन्त गुरु मानव दयाल जी महाराज,
मानवता मन्दिर, होशियारपुर 20. 3. 83

सोच समझ जड़ प्रानी, तेरा नर तन बीता जात रे ॥
खान पान निद्रा में भूला भक्ति भजन अलसात रे ।
पल में बिनस जाय यह देही, ज्यों तारा परभात रे ॥
तीरथ राज समाज गुरु का क्यों नहीं संगत जात रे ।
भूल भरम तज काम क्रोध तज, लख लख यम का घात रे ॥
भव सागर एक अगम पंथ है त्रिय तप का उत्पात रे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी सतपद मग दरसात रे ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम् मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम् ।
मोक्ष मूलं गुरोः कृपा । तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
मानव धर्मस्य धातारं, दाता दयालस्य प्रियतमम् ।
सन्त धर्मस्य गोप्तारं फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, प्यारे सत्संगियो ! आज के मासिक सत्संग में, मैं आपको पहले तो सद्भावना देता हूं । चैत्र मास है, चैत्र में चेतावनी दी जाती है और कहते हैं चैत्र मास में नया खून बनता है । इसमें आपका खून आज मे नया बन जाये ऐसी मेरी भावना हैं । अर्थात सत्संग में आने से आपको इतना लाभ हो कि आपका जो आन्तरिक ज्ञान है वह निखर आये और आपको एक नवीनता (नया पन) महसूस होने लगे ।

मनुष्य तन में समझने की मुख्य बात यह है कि असल में आप कौन हैं । असल में आप सत्य रूप हो, जैसे कि दाता दयाल जी महाराज ने परम दयाल जी को चिताया—

रूप तेरा अति प्यारा फकीरा, रूप तेरा अति प्यारा ।
तू सत् चित् आनन्द की मूरत, तू तीनों से न्यारा ॥

चिताया किसको जाता है ? याद किसको दिलाया जाता है ? याद तो वह चीज दिलाई जाती है जो उसके अन्दर पहले ही मौजूद है । सन्तमत या राधास्वामी मत को हमने मानव धर्म कहा है । मानवधर्म इस लिए कहा है कि एक सत्य है, सत्य का धर्म है और वह मानव स्वयं मानव ही सत्य है । इस नामकरण से एक तो इस राधास्वामी मत की या सन्तमत की सच्चाई बयान की जाती है और दूसरा इस मत या इस शैली या इस पद्धति या इस रास्ता या इस पन्थ का जो उद्देश्य है वह भी समझ में आ जाता है । राधास्वामी मत का मतलब कोई लिखा नहीं है । वैसे तो मनुष्य अपने आप में पूर्ण है यही वेदों और उपनिषदों में भी लिखा है । जिसने यह लिखा है उसको यह अनुभव हुआ तब उसने लिखा । उसने अनुभव करके किताबों में लिख दिया, आप उसको पढ़ो, उसका पाठ करते जाओ, यत्न करते जाओ, यत्न करते जाओ परन्तु आप को पता चलेगा कि आप सत्य रूप हो ? इसलिए इस सबसे ऊँचे और श्रेष्ठ परन्तु कठिन विषय को सहज बनाने के लिए ही यह सन्त मत या राधास्वामी मत इस दुनियां में आया है ।

परम दयाल जी महाराज को नमस्कार करते समय मैंने मानवधर्मस्य धातारं अर्थात मानवधर्म का आधार कहा है । यह मानव धर्म, सन्तमत या राधास्वामी मत कोई नया मत नहीं है; पहले भी था अब भी है, आगे भी रहेगा । पहले यह सैन-बैन में था । सैन-बैन में इसलिये था कि यद्यपि यह सच्चाई तो उपनिषदों में भी लिखी हुई है परन्तु जिस वक्त उपनिषद लिखे गये थे उस वक्त वातावरण और था । लोग मान के लिये युवावस्था में भी और सन्यास से पहले वानप्रस्थ हालत में भी आश्रम में जाते थे । उस वक्त जो पढ़ाई भी होती थी वह इसी ज्ञान को देने के लिये होती थी कि तुम पूर्ण हो ।

उपनिषद है क्या ? उप का मतलब निकट, निषद मायने बैठना । अर्थात गुरु के निकट बैठना । नजदीक बैठने का मतलब क्या है ? सत्संग । मैंने आज मंगलाचरण में कहा है "ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः" कांसे या पत्थर की मूर्ति भी पूजे तो इसके जरिये भी आपकी इच्छा तो पूरी हो जायेगी लेकिन

अगर जीती जागती गुरु की मूर्ति सामने बैठी हो तो और भी अच्छा है। पिछले जमाने में कई वर्षों तक गुरु के पास बैठना पड़ता था तब जाकर ज्ञान होता था कि मैं कौन हूँ, तब जाकर पता चलता था कि मैं सत् हूं, चित् हूं, और आनन्द हूँ। यह बातें जो उपनिषदों में लिखी है वह तो बिल्कुल सही है परन्तु वह अनुभव पर आधारित थीं और इस ज्योंतियों की ज्योति को आप के अन्दर सुलगाने वाला खूब ज्योतिमय होता था तब यह ज्योति से ज्योंति सुलगती है। इसीलिए कहा गया है कि यह सीना-ब-सीना का ज्ञान है।

उपनिषद के इस मन्त्र को परम दयाल जी महाराज बहुत पसन्द करते थे—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

सब का आधार सर्वाधार' अविनाशी, परमतत्व, अलरव, अगम, दयाल, पराक्रम, परमात्मा जो कुछ भी अधार है वह अपने आप में पूर्ण है। आधार तो हैं ही। इसको तो सब मानेंगे। क्योंकि बिना आधार के धार नहीं है और धार में ही जगत् है। धार मैदूद (सीमित) होती है। धार में ही शरीर है, मन है, बुद्धि है, काल है, माया है और हमारी सुरत हैं। सुरत हमारी आत्मा की लौ है। जब सुरत सार शब्द की तरफ लगती है तो उस वक्त पता चलता है कि मैं अविनाशी हूं; हमारा जो आपा है बह सत् चित् आनन्द से भी परे अविनाशी तत्व है।

पुराने जमाने ने इसी ज्ञान के लिए शिष्य गुरु के पास जाता था। परिश्रम करता, बड़ी श्रद्धा से गुरु के पास बैठना टिकटिकी बाँधकर देखता, सत्संग सुनता और फिर मनन करता था। मनन से मतलब बुद्धि विवेक और विचार से है। जो शब्द रह जाते, बाद में वह बड़ी नम्रता से प्रश्न करता था तब वर्षों के बाद सभी शक दूर होकर उसको अकेलियत जा ज्ञान होता था। गुरु को टिकटिकी बाँधकर लगातार देखने का मतलब यह है कि जो संस्कार गुरु के हैं, जो ज्ञान उसका है, जो हालत उसकी है अगर ध्यान लगातार बैठा जाये तो वही हालत उसमें पैदा हो जाये। मैं तो कहता हूँ कि बिना ध्यान के भी घर के अन्दर साथ रहने से एक दूसरे की आदत आ जाती

अधिकारी जो ज्ञान लेने के लिए आता है उसके लक्षण होते हैं। अधिकारी का सबसे बड़ा लक्षण सच्चाई है। जो आदमी सच्चा है वही अधिकारी है। मैंने पहले भी आपको एक उदाहरण दिया था कि एक शिष्य गुरु के पास गया और कहा महाराज ! मुझे आप शिक्षा दीजिये, आश्रम में मुझे जगह दीजिये। गुरु ने पूछा कि यह बता कि तू किसका बेटा है और तू किस खानदान का है। उसने कहा महाराज ! मैं जानता नहीं हूँ, मैं अपनी माँ से पूछ के आता हूं। माँ के पास गया। उसका नाम जब्बाल था। पूछा कि मेरे पिता का क्या नाम है ? मेरा खानदान क्या है ? तो उस माँ ने कहा भई ? सच्ची बात तो यह है बेटे। कि जब मैं युवावस्था में थी तो पैसे के लिए बहुत से घरों में नोकरानी का काम करती थी, और मेरा अनुचित सम्बन्ध कइयों से हुआ और उसके बीच में तू पैदा हो गया मुझे पता नहीं। मैं बता नहीं सकती लेकिन मैं जब्बाल हूं तेरा नाम सत्यकाम है इसलिए तू सत्यकाम जब्बाल हो गया। यह बात सुनकर वह गुरु के पास आया। गुरु ने फिर पूछा कि भई ! तेरा कौन सा खानदान है ? तो उसने वही की वही बात सुना दी कि मेरी माँ ने ऐसा कहा कि युवावस्था में कई सम्पर्क हुए, वह जानती नहीं है कि मेरा पिता कौन है परन्तु वह जब्बाल है, मैं सत्यकाम हूँ तो मैं सत्यकाम जब्बाल हूँ ! गुरु ने कहा बहुत ही अच्छा ! तू ही सच्चा ब्राह्मण है ! तूने सच्चाई को छुपाया नहीं ! सच्चाई पर चलना और सच्चाई को मानने के लिए तैयार होना ही अधिकारीपना है। और उसको जब ज्ञान दिया वह ज्ञान कई वर्षों तक चला। सत्यकाम जाबाल ने कई उपनिषद् लिख डाले जिसमें उसने बताया है कि परमतत्व क्या है। वो जरा कठिन शब्दों में हैं मैं उसको सरल बना के आपको बताता हूं कि उपनिषदों के अन्दर तीन चीजें हैं। एक तो यह कि वह आधार क्या है जहाँ से हम आये हैं, उसका क्या स्वरूप है ? दूसरे वह कैसे समझा जाय ? तीसरे मैं कौन हूं और मेरा उस परमतत्व से क्या सम्बन्ध है ?

खैर ! लम्बी बात नहीं करता ; मैं बताना चाहता हूँ कि वह आधार

है उसी से सब कुछ बना है और वह सबके अन्दर रम रहा है। वह सबका जीवनकर्ता है। उसे देखा नहीं जाता लेकिन देखना उसके बिना नहीं होता उसे सुना नहीं जाता, उसे छुआ नहीं जाता लेकिन सुनने और छूने के अन्दर वही होता है। वह अनुभव करता है, वह साक्षी है और उसके बारे में शक हो ही नहीं सकता :—

हर चीज में मौजूद है और नज़र आता नहीं।
योग साधन के बिना उसे कोई पाता नहीं॥

सम्बन्ध तो यह है कि आप उसी के अंश हो। बुद्धि उसी के सहारे है लेकिन बुद्धि उसे नहीं जानती। वह सत बुद्धि से जाना जाता है। जो जान गया उसके मन के अन्दर समता व खुशी दिलाने के लिए गुरु ज्ञान देता है। हर चीज पर शक किया जा सकता है लेकिन एक बात पर शक नहीं किया जा सकता कि मैं शक कर रहा हूं। मैं शक करने वाली स्त्री हूं इस पर कोई शक नहीं कर सकता अगर भ्रम करने वाला नहीं हो तो भ्रम ही नहीं हो सकता! तुम्हारा अपना आपा वह है जिस पर शक किया ही नहीं जा सकता। लोग क्या ढूंढ़ते हैं? दरअसल लोग खुद को ही ढूंढ़ते हैं। अगर किसी को पूछो कि तुमको क्या चाहिए? वह कहेगा लाखों रुपये चहिए, पुत्र चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए। यदि मैं पूछूँ कि तुमको यह चीजें क्यों चाहिये तो उसका जवाब होगा कि इन चीजों से मुझे खुशी मिलती है, प्रसन्नता मिलती है। इस पर अगर आप गौर करो तो स्पष्ट होगा कि हर व्यक्ति अपने आप को ही ढूंढता है।

सन्तमत कहता है कि यह बात जो वेदों और उपनिषदों में लम्बी चौड़ी कही गई है और बड़ी कठिन है। उसके लिए चार सीधे तरीके हैं :—

एक जन्म गुरु भक्ति कर दूसरे जन्म नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम॥

पुजारी बनने और भोग विलास में रहती हैं, किन्तु यह दोनों के दोनों अधोगति में ही रहते हैं। सुगति में रहने वाले केवल वे लोग हैं जो हर हाल में खुश रहते हैं।

—०—

(४) भोजन किस प्रकार खाना चाहिये

हम देखते हैं कि बहुधा लोग समता से कम नहीं लेते मगर इसका कारण क्या है ? इस पर सब लोग मनन करते हैं। आज हम इसी विषय को वादा-विवाद में लाना चाहते है।

संस्कृत भाषा में आदमी के लिये मनुष्य शब्द प्रयोग किया जाता है। मनुष्य वह है जिसमें मनन शक्ति हो। मनन शक्ति का संबन्ध केवल मन से है, क्योंकि मनन करना मन का स्वभाव है। इस नियम को ध्यान में रखते हुए मनुष्य की सिरखपरख उसके शारीरिक और बाह्य बनावट देख कर न करना चाहिये, किन्तु उसके मनको देखना चाहिये। तब जाकर पता लगेगा कि वास्तव में वह कैसा और क्या ?

समता न रखना एक तरह की बीमारी समझी जाती है। कुछ लोगों का ख्याल है कि यह आदत माँ बाप से बतौर उत्तराधिकार मिलती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उत्तराधिकार कहाँ से आता है ? माँस मज्जा से या हृदय से ? मांस मज्जा की इस मामले में कोई विशेषता नहीं हैं। यह हृदय के बाहिरी पर्दे अथवा खोल हैं और हृदय की ख्यालो धारों के घनेपन की सूरते हैं। आज लोग मेरी बातों को न समझेंगे किन्तु समय आवेगा जब बुद्धि खराद पर चढ़ती हुई बहुत ही तेज हो जावेगी। उस समय यह भेद भली भाँति समझ में आ जावेगा और शरीर के साथ मन के सम्बन्ध का भी पता लग जावेगा। इसलिये हर मनुष्य को मन की कलाबाजियों से बच कर रहने की अति आवश्यकता हैं। नहीं तो वह ऐसी सख्त ठोकर खायगा कि कहीं का भी न रहेगा।

विचार प्रवेश करके विशेष प्रकार के माँस मज्जा, नस नाड़ी और हड्डियाँ बनाते रहते हैं और यह सब मिलकर मन को प्रभावित करते रहते हैं। वैष्णवों में केवल सतोगुणी आहार खाने का उपदेश है। ताकि उससे सतोगुणी वृति पैदा हो। मन में तमोगुण या रजोगुण प्रबेश न करने पावे। उनका यह भी आदेश है कि खाना शान्ति के साथ अकेले बैठ कर खाना चाहिए। किसी की दृष्टि न पड़ने पावे नहीं तो वह स्वास्थ्य को हानिकर सिद्ध होगा। यह उपदेश यों ही नहीं किया जाता है। बल्कि यह उपदेश किसी नियम पर आधारित है। भाव यह है कि खाना अगर किसी के सामने खाया जावेगा तो उसकी दृष्टि उस पर पड़ेंगी, उसके विचार उसमें प्रविष्ट हो जावेंगे और बह इस आहार को प्रभावित कर देंगे। इसका परिणाम खाने वाले के माँस, मज्जा पर भी अवश्य पड़ेगा।

दृष्टि का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। लोग हर एक के सामने खाना खाते हैं। उनकी दृष्टि उस पर पड़ती है और उनके विचार उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि खाना विषैला हो जाता है। लोगों की ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि पड़ते ही मन के प्रभाव नेत्रों के मार्ग से निकल कर खाने में प्रविष्ट कर जाते हैं। जो लोग नानबाइयों, और हलवाइयों की दुकान पर सबके सामने खाना खाते हैं वह हजार करें स्वास्थ्य की संपत्ति से सदा ही वंचित रहेंगे।

तुम्हारे 'शास्त्रकारों' ने तुम्हें सब प्रकार से खाने के विषय में कठिन उपदेश किये हैं। वह कहते हैं कि खाना स्वच्छ हो। स्थान अच्छा हो। चौका दिया हो। हाथ पाँव धोकर और स्वच्छ कपड़ा पहन कर भोजन किया जावे। कोई पास न हो। यदि किसी के सामने ही खाने की इच्छा हो तो अपनी माँ को सन्मुख बिठालो। कुत्ते और मोर के सन्मुख भी खाना हानि कर नहीं होता। मनुस्मृति की आज्ञा है कि पहले नौकर को खाना खिला कर तब स्वयम खाना चाहिये। अभिप्राय यह है कि उस की लोभ भरी दृष्टि खाने पर न पड़ें।

यदि खाना खा चुकने के बाद नौकर सामने बैठ जावे तो कोई हानि नहीं। इसी नियम पर हिन्दू राजाओं के यहां यह साधारणतया प्रचलित है कि रसोइया खाना खाकर तब राजा के सामने पेश करता है ताकि उसकी कुदृष्टि का प्रभाव खाने में प्रवेश न करने पावे। आजकल के नवयुवक इस बात की हंसी उड़ावेंगे किन्तु वे बेचारे निर्दोष हैं। अभी तक उन्हें नियम की समझ नहीं हैं इसलिये क्षमा के योग्य हैं। खाना खाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान विशेष तौर पर रखना अति आवश्यक है।

१- जिस समय खाना सन्मुख आता है उसमें अपना विचार प्रवेश होता है। इसलिये यह नियम है कि पूजा पाठ करने के पश्चात् खाना खाने बैठो ताकि मन पवित्र भावों से भरा रहे। किसी की घृणा का विचार मन मैं न हो। किसी की ओर से ईर्ष्या द्वेष न हो। मन क्रोध से पाक साफ रहे। लोभ और काम के विचार मन पर अधिकार न पाने पावें नहीं तो उसी प्रकार के भाव तुम्हारे अन्दर नियम के अनुसार और स्वभाव-वश उत्पन्न होंगे और स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ेगा।

खाना, भोग विलास, भजन, अभ्यास, जप तप जब हों एकान्त में हो। सबके सामने जो खाना खाता हैं यह विष खाता है। मिलकर खाओ अथवा सब एक साथ बैठकर खाओ। इसमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु जो खाने में सम्मिलित न हो उसके सामने खाना पेट को साँप और बिच्छू से भरना है। कहावत है :—

किसी बादशाह के पेट में दर्द रहा करता था। हकीमों और चिकित्सकों ने सहस्रों प्रकार की दवाइयाँ खिलाईं। लाभ नहीं हुआ। उसकी दशा बिगड़ती ही गई। एक फक़ीर फिलोसफर आया। बादशाह ने उससे शिकायत की। फिलोसफर ने कहा "मेरे सामने खाना खाओ। खाना आया थाल चादर से ढका हुआ था। वह खोलकर दिखाया गया और फिर ढक दिया गया। सारे दरबारी उपस्थित थे। फिलोसफर ने चाटर उठाई। थाल बिच्छूओं से भरा हुआ था। उसने कहा "आप नित्य यह खाते थे। दर्द न

कहा "कुछ नहीं यह सब दरबारियों की दृष्टि का दोष है। आप खाना खाते हैं और यह सभी देखा करते हैं। उनके मुँह में पानी भर आता है। उन्हें लालच होती है। इनकी डाह आंखों की राह से उतर कर खाने में पड़ती है और वह बिच्छूओं का ढेर हो जाता है। आप या तो अकेले एकान्त में भोजन करें या उन्हें भी सम्मिलित कर लिया कीजिये। तब इस रोग से मुक्ति होगी"। उसने कुछ दवा खिलाई। सब के साथ उसे खाना खिलाया और उसी दिन से आराम होने लगा।

यह कथा है। दृष्टि में रसायनिक प्रभाव होता है जो भोजन को प्रभावित कर देती है। सावधानी आवश्यक है।

एक समय बाबू रघुनन्दन प्रसाद डाक्टर रामकिशोर के श्वशुर मुझ से मिलने आये। एक दिन मेरे साथ खाना खाया। फिर अपने हाथ से अलहदा खाना पकाते थे। एकान्त में बैठ कर खाते थे। खाते समय किसी से बात चीत नहीं करते थे।

मुन्शी नौधिराय को किसी के हाथ का खाना पसन्द नहीं है वह अपने हाथ से पकाते खाते हैं। मैं पांच वर्ष से बीमार चला आता हूँ। एक आटे की रोटी का बताशा कठिनता से मुँह जाता था और वह भी कभी कभी नहीं। आपने कहा "मेरे हाथ का बनाया हुआ खाओ।" उन्होंने दो मोटे परांठे बनाये। मैं शौक से दोनों चट कर गया। वह कई दिन तक खिलाते रहे। बिना औषधि चिकित्सा के स्वस्थ हूं। वह सितम्बर में यहां थे। अक्टूबर से चले गये। अब वैसी तो दशा नहीं है। हां, वह बात नहीं रही। जब वापिस आवेंगे फिर उनके हाथ का पराठा और मैं ७५, ७६ का पाठा।

सरदार लेफ्टीनेन्ट हुक्मसिंह मुझे सबके सामने खाना खिलाते हैं। यद्यपि मैं प्रसाद सबको पहिले दे दिया करता हूं किन्तु कोई न कोई आदमी तो रहते हैं जो खाने या प्रसाद लेने में शामिल नहीं होते हैं। उन्हें इशारे इशारे में बार बार समझाया किन्तु वह अभी इशारा नहीं समझते।

(२) अधिक कभी न खाओ। क्यों ?

(१) मन चचल रहेगा।

ऐसा ध्यान हो कि जब कोई बात तुम्हारे मतलब की आये तुम उसे झट पकड़ लो । नाम भी गुरु के आधार होता है, वह जानता है कि किस तरीके से नाम दिया जाये । जन्म से मतलब यह नहीं कि और जन्म लेना है, मतलब यह है कि कुछ समय के लिए सत्संग करो, फिर नाम को पकड़ कर साधन करते हुए इसी जन्म में मुक्ति को हासिल कर लो और निजी धाम को धाओ । तो आज का शब्द था :—

सोच समझ जड़ प्रानी, तेरा नर तन बीता जात रे ।

तो चेत के महीने की यह चेतावनी है कि शरीर तो चला ही जायेगा, तुम अपने समय को नष्ट न करो । दूनिया में जहाँ सब कामों को वक्त देते हो, कम से कम और कुछ नहीं तो आधा घण्टा, पौन घण्टा, तो खोज मालिक जिसको पाने के बाद आपकी सभी समस्यायें सुलझ जायेगी उसको याद करने में जो होना चाहिए । सत्संग को समय देना चाहिए :—

खान पान निद्रा में भूला, भक्ति भजन अलसाय रे ।
पल में विनस जाये यह देही, ज्यों तारा परभात रे ।।
तीरथ राज समाज गुरू का क्यों नहीं संगत जात रे ।

तीर्थ करना जरूरी है क्योंकि वहां पर महापुरुषों की किरणें होती हैं दाता दयाल कहते हैं कि सबसे अच्छा तीर्थों का राजा जो है वह गुरु है, जहां पर सतगुरू सच्चाई का ज्ञान दे रहा है । सत्संग को राजा इसलिए कहा है कि किसी सच्चे सत्तगुरू का एक घड़ी का सत्संग लाखों वर्षों की तपस्या से ज्यादा लाभ देने वाला है:—

भूल भरम तज काम क्रोध तज, लख लख यम का घात रे ।

पहली भ्रम तो हमारी यह है कि हम समझते हैं कि जो मर गया सो मर चुका, हम हजारों साल तक जीयेंगे । यह बहुत बड़ी भूल है ।

काम का मतलब का मतलब कामना या मन की भ्रमण है । सिर्फ यही काम नहीं है जो स्त्री पुरुष का सम्बन्ध होता है । काम जो है इसी काम को अगर तुम पवित्र रूप से प्रेम में परिवर्तित कर दो तो वह तो गृहस्थ जीवन में बहुत ऊँचा है । काम क्रोध हमारे अन्दर दो विशेष शक्तियाँ हैं ।

परमदयाल जी महाराज ने कई वार आपको कहा कि तुम्हारे अन्दर काम नहीं तो तुम नपुंसक हो। काम जब प्रेम में परिवर्तित हो जाता है तो वह पवित्र हो जाता है। इसी तरह से क्रोध भी अपने आप में बुरा नहीं है; क्रोध भी शक्ति है। बिना क्रोध के आदमी नैतिक नहीं हो सकता। अगर कागज सख्त नहीं है तो मुल्क में अमन नहीं रह सकता। मनुष्यता धर्म की वही परिभाषा है कि आप मन, वचन, कर्म से किसी का दिल न दुखायें तो आप धर्मात्मा हैं; कोई जरूरत नहीं है कि यह करूँ या वह करूँ। जो मन, बचन, कर्म से अपनी तरफ से किसी को दुख नहीं देता वही सत्य और प्रेम पर चल रहा है।

अपने आप में काम भी बुरा नहीं है और अपने आप में काम भी वुरा नहीं है और क्रोध भी बुरा नहीं है और क्रोध भी बुरा नहीं है मगर ऐव हमारे अन्दर उत्पाती रजोगुण से पैदा होते हैं। तो इनको कौन जीतता है ? जिसको यह ज्ञान हो जाय :—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरि द्रयेभ्यः परंमनः,
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

पाँच ज्ञानइन्द्रियों और पांच कर्म इन्द्रियों से ही सारा का है। जो आदमी इनका इस्तेमाल तो करेगा मगर इनको अप रखता है यह काम क्रोध पर भी विजय पा सकता है। ज्ञान इ मन इन्द्रियों से ज्यादा सूक्ष्म है। ज्ञान इन्द्रियों का काम तब मन साथ होता है मन अगर काम इन्द्री की तरफ झुक ग से अलग होता है। मन अगर बुद्धि व आत्मा की तरफ गया ऊँचा चला गया तो मन दोनों तरफ जा सकता है। मन हुए हैं, देख रहे हैं मेरी बात सुन रहे हैं, अगर आपका ध्यान जो मैंने वहा है आप नहीं सुनेंगे। बुद्धि जो समझ देती है नियन्त्रण कर सकती है। अब मुझे प्यास लग रही है, मन व लेकिन बुद्धि उसे रोक सकती है। और सत बुद्धि ही के द्वारा सुरत नीचे या ऊपर लगा सकते हैं। हमारी ज्ञान इंद्रियों, हमारा

सब पर विजय पाने के लिए हम अपनी सुरत का इस्तेमाल कर सकते हैं इधर से अचिन्तन करके, इन पर नियन्त्रण करना और अपनी तवज्जह को बुद्धि से परे जो हमारे अन्दर कभी नाश न होने वाला श्रेष्ठ तत्व है उधर लगाना यह हमारे हाथ में हैं। इन्द्रियाँ अपने आप में खराब नहीं है।

मनुष्य के अन्दर सबसे ज्यादा शक्ति यही है कि वह काम क्रोध का दमन करे मगर दमन जो है यह आखिरकार खतरनाक है। दमन से ज्यादा अच्छा यह है कि शक्ति अच्छे रास्ते पर लगायें जहां इनका प्रयोग हो सके। इसको कहते हैं शक्ति-मार्ग अन्तरीकरण। तो काम और क्रोध दोनों का मार्ग आन्तरीकरण हो सकता है। काम का मार्ग अन्तरीकरण यह है कि वह गृहस्थ में आ जाये। आपको बिलकुल Practical (क्रियात्मक) बात बता रहा हूं इस पर अमल किया जा सकता है। उत्तम सन्तानोत्पति के लिये इसका सदुपयोग किया जाये। गृहस्थ आश्रम बहुत जरूरी है माताएँ हमारे राष्ट्र को बना सकती हैं। तो गृहस्थ आश्रम में प्रेम के रूप में उसका प्रयोग किया जाये तो वह प्रेम मनुष्य का प्रेम इश्क-ए-मजाजी जो है वह इश्क-ए-हकीकी अर्थात मालिक के प्रेम में बदल सकते हैं। कोई बच्चा बहुत लड़ाकू होता है तो लोग कहते हैं यह तो बहुत खराब है। उसकी इस शक्ति का उपयोग में लाना यह है कि उसे खिलाड़ी बना दो, बहुत अच्छा खिलाड़ी हो जायेगा, काबू में आ जायेगा। फौजी बन जायेगा, सेनापति बन जायेगा। इस तरह मार्ग आन्तरीकरण करना बहुत सहज है।

लेकिन अच्छे आदमियों के अन्दर यह शक्ति दूसरे रास्ते पर चली जाती है और सन्तमत या मानव धर्म के अन्दर विशेषत: काम और क्रोध की शक्ति जो लगातार बह रही है इसका प्रयोग करके हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। काम और क्रोध की शक्ति को बदलने का सबसे ऊंचा जो है वह है सुरत शब्द योग। अगर मालिक की दया शामलेहाल है और किसी सच्चे सत्गुरू की कृपा दृष्टि हो जाये तो सत्संग करके अपनी शक्ति को ज्ञान दया और मालिक के प्रेम में परिवर्तित करके; इन्सान मालिक का सच्चा

भक्त बन सकता है। सन्तो ने जितनी कवितायें लिखीं हैं यह काम का ही रूपान्तर है। परमदयाल जी सत्संग में कहते थे कि मेरी काम की वृत्ति ज्यादा थी। महात्मा गाँधी ने अपनी काम की वृत्ति का रूपान्तर करके इसे। जगकल्याण में लगा दिया तब दुनियां में सबसे बड़े विख्यात आदमी बने यह सब बिलकुल ऐसी ही बाते हैं जैसे हम पानी को बाँध लगा और नहरें बनाकर के, नियम में लाकर इसे उपज के लिए प्रयोग करते हैं और भाप बनाकर इसी से इंजन चलाने का भी काम लेते हैं। बेहतर यह है कि काम क्रोध क्रोध का दमन मत करो बल्कि इनको परिवर्तित कर दो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

भव सागर एक अगम पंथ है, त्रियता का उत्पात रे।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सतपद मग दरसात रे॥

भव सागर क्या है ? भव है होना। जो चीज अपने आप में प्रकट होने से प्रकाश बन जाती है, प्रकाश के बाद वह ख्याल बन जाती है, विचार बन जाती है, विचार के बाद शरीर बन जाती है, वह परम तत्व है, यह भव उसी का है। जब तक भव में है, जब तक शरीर, मन और आत्मा में भी है,

सत, रज तम में भी है तो इसके अन्दर दुःख और सुख है। आत्मा के अन्दर आनन्द जरूर है लेकिन शान्ति नहीं है। शान्ति देने के लिए सीधा सत पद का रास्ता है। सरल तरीका से बता दिया कि हम जिस तरह से आये है उस तरह से शरीर मन और बुद्धि को धीरे-धीरे लपेट करके प्रेम और भक्ति के आसान तरीके से सुरत शब्द योग के द्वारा चलें इसके लिये हमें सत्संग और सतनाम जरूरी है इस तरह हम अपने परम धाम पर पहुंच सकते हैं। राधास्वामी का मतलब यहां यही है कि परमतत्व ने आकर के कई बार हमें चेतावनी दी, उस चेतावनी को सुनना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं आज का चैत मास का सत्संग समाप्त करता हूं। मेरी हार्दिक भावना है कि आप सुखी हों, आनन्दमय रहें और आपकी जो इच्छा है मलिक उन इच्छाओं को पूरा करे। आपके लिये यह दिल से दुआ निकल रही है।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही हैं ।

दिनांक १५ अक्टूबर, १९७८

सुधा मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG - 28

पुस्तकें

हमारे ...
महर्षि शिवब्रतलाल
कृत
हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक,
स्त्री उपयोगी,
स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी
पुस्तकें तथा 'शाहो' और 'मोती'
सिलसिले के उपन्यास तथा
परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज
कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें
मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।
डाक खर्च सब का अलग है।
पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से
भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—
कार्यालय
मनुष्य बनो
शिव भवन, लेखराजनगर,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं० 170
श्री Chilwar Narsimlu
Book Seller
V.P.O. Banswara
Nizamabad Dt.

अ० स० सम्पादक — महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक
व्यवस्थापक व प्रकाशक—
श्रीमती सुधा मीतल,
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़।